ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-5* Issue-12* March-2021
Anthology : The Research

राजस्थान में आदिवासी जनजातियों के उत्थान हेतु राजनीतिक एवं सामाजिक संस्थाओं द्वारा किए गए कार्यों का ऐतिहासिक अवलोकन (20वीं शताब्दी में)

Historical Overview of The Work Done By Political And Social Institutions For The Upliftment Of Tribal Tribes In Rajasthan (In The 20th Century)

Paper Submission: 05/03/2021, Date of Acceptance: 15/03/2021, Date of Publication: 22/03/2021

रश्मि मीना
सहायक आचार्य,
इतिहास विभाग,
जय नारायण व्यास
विश्वविद्यालय, जोधपुर,
राजस्थान, भारत

Abstract

आदिकाल से ही भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक आदिवासी जनजातियां निवास करती रही हैं, जिनकी अपनी विशिष्ट पहचान है। वर्तमान में भी इन जनजातियों ने अपनी परम्पराओं, वेशभूषा, रहन–सहन, खान–पान, भाषा इत्यादि को संरक्षित रखा है तथा भारत के इतिहास में भी इन जनजातियों का अपना विशिष्ट स्थान रहा है। राजस्थान में निवासरत मुख्य आदिवासी जनजातियां – भील, मीणा, सहरिया, गरासिया, कथौड़ी, डामोर, कालीढोर, नाथकड़ा इत्यादि है। इन जाजातियों को ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीतियों के साथ स्थानीय जागीरदारों, जमींदारों, महाजनों, साहुकारों इत्यादि की शोषणकारी नीतियों का सामना करना पड़ा। गरीबी, अशिक्षा, अज्ञानता के कारण इनकी स्थिति और अधिक दयनीय होती गई। परन्तु समाज के प्रबुद्धजनों एवं सामाजिक संस्थाओं ने इन जनजातियों के सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान के लिए अभूतपूर्व प्रयास किए तथा इनमें राजनीतिक चेतना जागृत करने हेतु अथक प्रयास किए।

महात्मा गांधी द्वारा 'रचनात्मक कार्यक्रमों' में 'आदिवासियों की सेवा' को स्थान प्रदान करने के पश्चात् गांधीवादी कार्यकर्त्ताओं द्वारा इस संदर्भ में अभूतपूर्व कार्य किए गए, उदाहरणार्थ – आदिवासियों को स्वच्छता, शिक्षा, कृषि, चरखा, खादी इत्यादि का प्रशिक्षण देना इत्यादि।

इन सम्मिलित प्रयासों के परिणामस्वरूप धीरे–धीरे इन आदिवासी जनजातियों में सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना जागृत होने लगी तथा ये राष्ट्रवाद की मुख्य धारा से जुड़ने लगे। वर्तमान में भी केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा जनजातियों के कल्याण हेतु विभिन्न योजनाओं का संचालन किया जा रहा है परन्तु अभी भी सभी जनजाति समूहों को इनका लाभ नहीं मिल पा रहा है। अतः इस हेतु और अधिक प्रयास किये जाने आवश्यक हैं।

Since time immemorial, many tribal tribes have been residing in different regions of India, which have their own unique identity. Even today, these tribes have preserved their traditions, costumes, living habits, food habits, language etc. and these tribes have had their own special place in the history of India. The main tribal tribes living in Rajasthan are Bhil, Meena, Sahariya, Garasiya, Kathori, Damor, Kalidhor, Nathkada etc. These castes had to face the exploitative policies of local jagirdars, zamindars, moneylenders, moneylenders etc. along with the British imperialist policies. Their condition became more pathetic due to poverty, illiteracy, ignorance. But the intellectuals and social institutions of the society made unprecedented efforts for the social and economic upliftment of these tribes and made tireless efforts to awaken political consciousness in them.

After Mahatma Gandhi gave place to the 'service of the tribals' in the 'constructive programs', Gandhian activists did unprecedented work in this context, for example - training the tribals in cleanliness, education, agriculture, spinning wheel, khadi etc. As a result of these concerted efforts, gradually social and political consciousness was awakened in these tribal tribes and they started joining the main stream of nationalism. At present, various schemes are being operated by the Central and State Governments for the welfare of the tribes, but still not all tribal groups are getting their benefits. Therefore, more efforts are required for this.

मुख्य शब्द : ढूंढाड़, सम्प सभा, दापा, सागड़ी, मेर, ढ़ेबर कमीशन।
Dhundhar, Samp Sabha, Dapa, Sagdi, Mair, Dheber Commission.

प्रस्तावना

वे लोग, जो सभ्यता के प्रभाव से वंचित रहकर अपने प्राकृतिक वातावरण के अनुरूप जीवनयापन करते हुए अपनी जीवन–पद्धति, भाषा, संस्कार एवं व्यवसायों को अक्षुण्ण बनाए हुए हैं, 'आदिवासी' या 'जनजाति' कहलाते हैं। भारत के संविधान के अनुच्छेद 366(25) के अनुसार 'अनुसूचित जनजाति' से तात्पर्य – वे जनजाति अथवा इस प्रकार की जनजातियां अथवा जनजातीय समुदाय के अंशों अथवा समूहों से है, जो संविधान के अनुच्छेद 342 के अन्तर्गत 'अनुसूचित जनजातियों' के रूप में माने गए हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य राजस्थान में निवासरत जनजातियों के राजस्थान के इतिहास में महत्वपूर्ण योगदान को प्रकाश में लाने के साथ–साथ इन पर ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीतियों एवं स्थानीय शासक वर्गों (जमींदारों, जागीरदारों, महाजनों, साहूकारों, इत्यादि) की शोषणकारी नीतियों के पड़ने वाले दुष्प्रभावों को रेखांकित करना है। साथ ही तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक संस्थाओं द्वारा इनके उत्थान हेतु किए गए अभूतपूर्व प्रयासों एवं उनके परिणामों का भी उल्लेख करना है। इन जनजातियों के दमन हेतु लागू किए गए अमानवीय शासकीय कानूनों के उन्मूलन हेतु समाज के प्रबुद्धजनों द्वारा किए गए संघर्षों का उल्लेख करना है तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इन जनजातियों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने के लिए भारतीय संविधान द्वारा निर्धारित संवैधानिक प्रावधानों के परिणामस्वरूप इनकी परिवर्तित परिस्थितियों की समीक्षा करना है।

शोध पद्धति

प्रस्तुत शोध पत्र लेखन हेतु उपलब्ध द्वितीय अध्ययन स्रोतों के साथ–साथ राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर (ऑनलाईन पोर्टल) एवं भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली (ऑनलाईन पोर्टल) पर उपलब्ध शोध पत्र सम्बन्धी प्राथमिक स्रोतों (गैजेटीयर, भारत सरकार की जनजातियों सम्बन्धी रिपोर्ट्स, प्रजामण्डल दस्तावेज, विभिन्न राष्ट्रवादी नेताओं एवं संस्थाओं के पत्र, जनगणना रिपोर्ट्स, इत्यादि) का अध्ययन कर यथास्थान प्रयोग किया गया है, जिसका सम्पूर्ण विवरण शोध पत्र के अंत में सन्दर्भ सूची में दिया गया है।

आदिकाल से ही राजस्थान में अनेक आदिवासी जाति समुदाय निवास करते आये हैं। इनमें भील, मीणा, गरासिया व डामोर, कथौड़ी, कालीढोर, नाथकड़ा, पटेलिया, मेर एवं मेव जातियां प्रमुख हैं। राजस्थान में इन जनजातियों का निवास स्थान सामान्यतः दक्षिणी–पश्चिमी, पूर्वी व उत्तर–पूर्वी राजस्थान में अधिक है। **भील** आदिवासी उदयपुर, डूंगरपुर व बांसवाड़ा में; **सहरिया** एवं डामोर – डूंगरपुर में; **गरासिया** – सिरोही में[1] तथा **मीणा** जनजाति जयपुर, अलवर, करौली, भरतपुर, धौलपुर व कोटा में अधिक संख्या में पाई जाती हैं। निम्नलिखित सारणी में राजस्थान में आदिवासी जनजातियों के भौगोलिक एवं जनसंख्या वितरण को समझा जा सकता है–

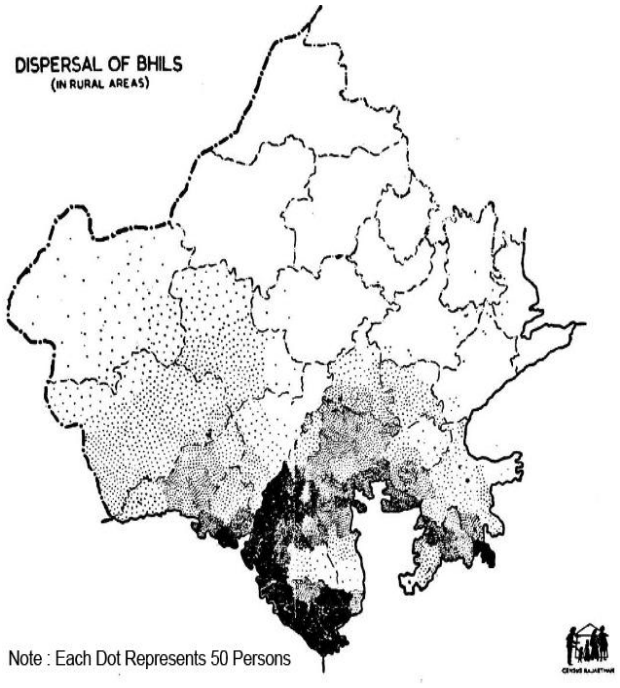

(a) Dispersal of Garasias,

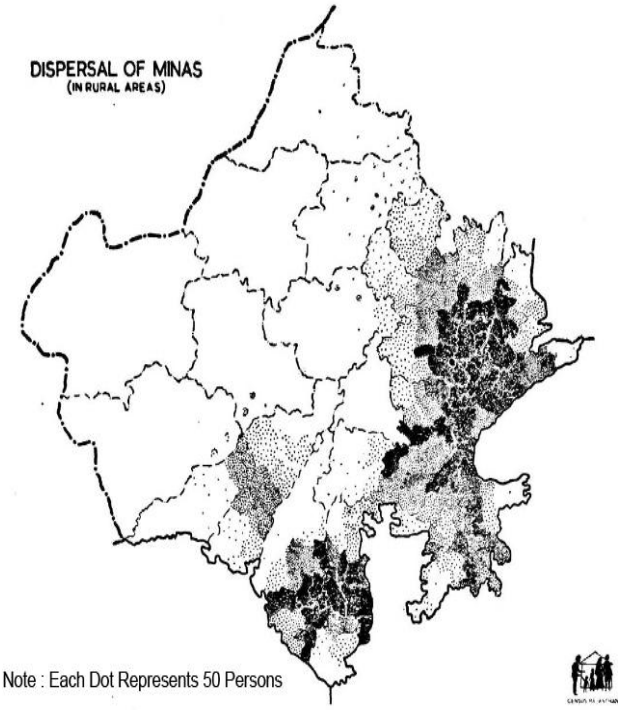

(b) Sahariyas & Damors

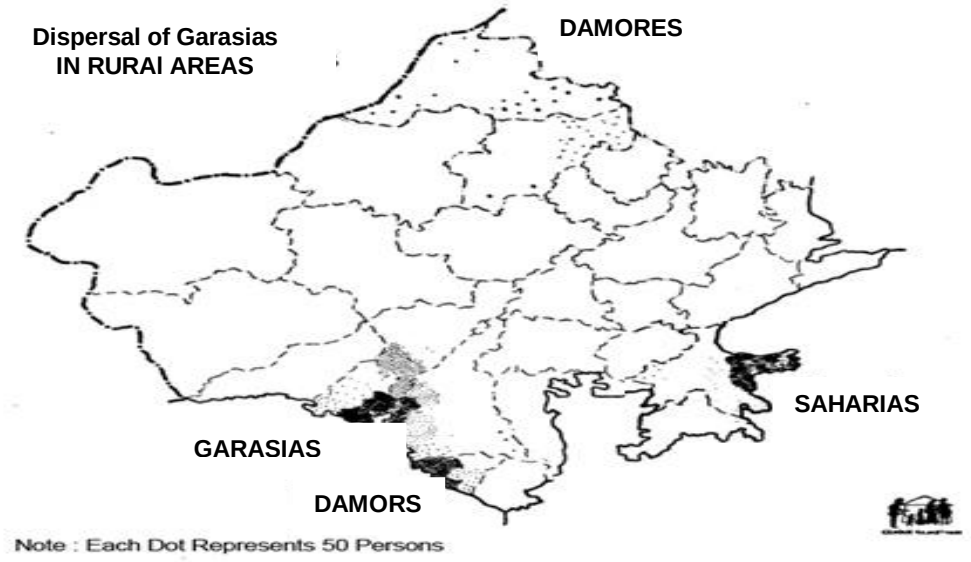

मानचित्र – 1 (एइएब) राजस्थान में जनजातियों का भौगोलिक वितरण
(स्रोत : एथनोग्राफिक एटलस ऑफ राजस्थान, जयपुर, 1969, रा.रा.अ., बीकानेर, ऑनलाईन पोर्टल)

सारणी–1 : राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों में भील, मीणा, गरासिया, सहरिया व डामोर जनजाति की जनसंख्या, 1961[2]

क्र. सं.	जिला	भील जनसंख्या		मीणा जनसंख्या		गरासिया जनसंख्या		सहरिया जनसंख्या		डामोर जनसंख्या	
		कुल	प्रतिशत	कुल	प्रतिशत	कुल	प्रतिशत	कुल	प्रतिशत	कुल	प्रतिशत
1.	जयपुर	--	--	212,237	18.4	--	--	--	--		
2.	सवाईमाधोपुर	--	--	204,380	17.7	--	--	--	--		
3.	उदयपुर	229,961	25.4	173,367	15.0	20,660	33.1	41	0.2	869	6.0
4.	पाली	--	--			8,836	14.1	--	--		
5.	अलवर	--	--	86,008	7.4	--	--	--	--		
6.	बांसवाड़ा	203,037	22.4	--	--	--	--	--	--		
7.	डूंगरपुर	180,780	20.0	45,953	4.0	--	--	25	0.1	11,395	78.4
8.	भीलवाड़ा	47,855	5.3	32,573	2.9	--	--	--	--		
9.	चित्तौड़गढ़	45,517	5.0	83,525	7.2	--	--	--	--		
10.	बाड़मेर	30,742	3.4	--	--	--	--	--	--		
11.	सिरोही	30,395	3.4	--	--	32,865	52.6	--	--		
12.	झालावाड़	29,133	3.2	--	--	--	--	90	0.4		
13.	जालोर	28,917	3.2	--	--	--	--	--	--		
14.	कोटा	21,637	2.4	79,123	6.8	--	--	23,125	99.2		
15.	बूंदी	--	--	49,461	4.3	--	--	--	--		
16.	टोंक	--	--	48,564	4.2	--	--	--	--		
17.	चुरू									1,206	8.3
18.	गंगानगर									1,049	7.2
19.	अन्य	58,731	6.3	140,429	12.1	148	0.2	18	0.1	15	0.1
20.	कुल	906,705	100.0	1,155,620	100.0	62,509	100.0	23,299	100.0	14,534	100.0

उपरोक्त मानचित्रों एवं जनसख्या विवरण के अध्ययन से स्पष्ट है कि मीणा समुदाय राजस्थान का सबसे बड़ा आदिवासी समुदाय है, जो 1971 की जनगणना के अनुसार राजस्थान की कुल आदिवासी जनसंख्या का 49.47 प्रतिशत था। इनके बाद राजस्थान में भील समुदाय, दूसरा सबसे बड़ा आदिवासी समुदाय है। गरासिया जनजाति का स्थान तीसरे नम्बर पर आता है। राजस्थान की कुल जनजातियों में सहरिया जनजाति का प्रतिशत 0. 99 है तथा 1959 ई. में गठित अनुसूचित जनजाति आयोग (ढेबर भाई कमीशन) में सहरिया जनजाति को प्रदेश की दुर्लभतम अनुसूचित जनजाति माना गया। इनके अलावा डामोर मेर एवं मेव भी राजस्थान की महत्वपूर्ण जनजातियां हैं।

राजस्थान के जन आन्दोलनों के इतिहास में यहां की जनजातियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। आठवीं शताब्दी में जब राजस्थान कई भागों में हूणों का प्रभुत्व था, तब भी ये आदिवासी जातियां ढूंढाड़, चित्रकूट, छप्पन, वागड़ तथा खैराड़ क्षेत्रों में शक्तिसम्पन्न एवं स्वतंत्रत थीं। राजस्थान में राजपूतों का आधिपत्य होने पर ये आदिवासी जातियां जंगलों की ओर जाकर बस गईं। प्रारम्भ में इनका राजपूतों के साथ संघर्ष चलता रहा।[3] परन्तु लगभग पंद्रहवीं सदी में राजपूतों एवं आदिवासी जातियों में सामंजस्य स्थापित होने लगा। ढूंढाड़ क्षेत्र में लम्बे समय तक राजपूत– मीणा संघर्ष चलता रहा, परन्तु कालान्तर में इनमें मित्रता कायम हुई तथा आम्बेर के कछवाहा शासकों ने मीणाओं को खजाने के रक्षक होने के विशेषाधिकार के साथ–साथ कछवाहा राजघराने के राजतिलक का अधिकार भी प्रदान किया।[4] इसी प्रकार राजपूत–मुगल संघर्ष के समय भीलों ने राजपूतों का साथ दिया। जिसके बदले भीलों को मेवाड़ के राजचिह्न में विशेष महत्व दिया गया। मेवाड़ के राजचिह्न के बीचोंबीच सूर्य एवं एकलिंग जी का चित्र है, जिसके एक ओर महाराणा प्रताप को खड़ग धारण किये हुए चित्रित किया गया है, वहीं दूसरी ओर तीर–कमान धारण किए हुए भील का चित्र है।[5] स्पष्ट है कि राजपूत शासकों ने इन आदिवासी जनजातियों के महत्व को समझा तथा अपने राज्य में सम्मानजनक स्थान दिया।

1818 ई. में राजस्थान के राजपूत शासकों ने ईस्ट इंडिया कम्पनी के साथ मैत्री संधियां सम्पन्न की, जिसका प्रभाव कालान्तर में इन आदिवासी जनजातियों पर भी पड़ा। ब्रिटिश हस्तक्षेप से इनके आवास क्षेत्रों में वन विभाग एवं पुलिस चौकियां स्थापित की जाने लगीं। इनके क्षेत्रों में जनगणना, पैमाइश तथा सरकारी कर्मचारियों के अत्याचार बढ़ने से इन जनजातियों में आक्रोश एवं असुरक्षा की भावनाएं विकसित होने लगीं। परिणामस्वरूप इन्होंने सरकारी आदेशों का उल्लंघन करना तथा लूटपाट करना प्रारम्भ कर दिया। खारवा पाल, पडूना, भोराई, बारापाल, काया, धुलेव, अलसीगढ़, कोटड़ा, पाई आदि स्थान जनजाति विद्रोह के केन्द्र बन गये। सन् 1821 में मेरों ने अंग्रेजी थाने लूट लिए तथा पुलिस अधिकारियों की हत्या कर दी। सन् 1857 में मेवात के मेवें ने अंग्रेजों के विरूद्ध बगावत की तथा सन् 1857 के विद्रोह के समय भी मीणाओं ने जयपुर से होकर दिल्ली जा रहे विद्रोहियों का साथ दिया।[6] अथक प्रयासों के बाद भी जब ये जनजातियां अंग्रेजों के नियंत्रण में नहीं आई तब इन्हें, 1871 ई. में 'अपराधी जाति अधिनियम' बनाकर तथा सन् 1897, 1911 तथा 1923 में संशोधित कर 'अपराधी जातियों' का नाम देकर इनपर कठोर प्रतिबंध लगा दिए गये। सन् 1950 की जनगणना के अनुसार अपराधी जाति में 31767 बावरियां जनजाति के लोग तथा 20252 मीणा जनजाति के लोग सम्मिलित थे।[7] इस अधिनियम का सहारा लेकर पुलिस इन्हें बहुत तंग करती, बेगार लेती, दिन में तीन बार थाने में हाजरी देनी पड़ती थी तथा पूर्व अनुमति के बिना ये अपना स्थान नहीं छोड़ सकते थे। जन्म से ही कोई भी इस जनजाति का व्यक्ति अपराधी जाति अधिनियम के अन्तर्गत आ जाता था। इस घृणित कानून के परिणामस्वरूप इनके आजीविका के साधन समाप्त हो गए तथा गरीबी एवं भुखमरी की विवशता के कारण इन्हें चोरी व लूटपाट करने पर मजबूर होना पड़ा। इन घृणित कानूनों के अलावा भी जागीरदारों, सेठ साहुकारों एवं महाजनों द्वारा भी इन गरीब, एवं अशिक्षित आदिवासियों का भरपूर शोषण किया जाता रहा तथा समय के साथ इनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय होती गई। इतनी विकट परिस्थितियों में निवास करने के कारण इनमें सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना जागृत होने की संभावनाएं अकल्पनीय थीं। परन्तु बीसवीं शताब्दी में राजस्थान में कुछ प्रबुद्ध एवं राष्ट्रवादी लोकनायकों ने इन आदिवासी जातियों की पीड़ा को समझा तथा इनका सामाजिक उत्थान करने एवं इनमें राजनीतिक चेतना जागृत करने तथा अपने अस्तित्व एवं अधिकारों के लिए जागरूक होने एवं इन्हें शिक्षित करने के प्रयास प्रारम्भ किये।

इस क्रम में सर्वप्रथम डूंगरपुर रियासत के श्री गोविन्दगुरू जी का उल्लेख करना आवश्यक है, जिन्होंने सर्वप्रथम आदिवासियों की इस पीड़ाजनक स्थिति को समझा तथा भील एवं मीणों की इस बिखरी हुई जनशक्ति को संगठित करने का निर्णय लिया।[8] गोविन्द गुरू ने सिरोही के भील क्षेत्रों में 'सम्प सभा' की स्थापना की तथा इसके माध्यम से आदिवासियों में सामाजिक सुधार यथा – शराब एवं मांस का सेवन न करना, चोरी, डकैती लूटमार छोड़ देना, मेहनत द्वारा खेती व मजदूरी करके जीवन यापन करना, बच्चों को शिक्षा दिलवाना, स्वच्छता से रहना, अपनी पंचायतों की मध्यस्थता से विवादों का निपटारा करना, बेगार न देना एवं स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करना, इत्यादि करने के प्रयास प्रारम्भ किये गये। धीरे–धीरे राजपूताने के दक्षिणी–पूर्वी क्षेत्रों में सम्प सभा का प्रभाव फैल गया। अब इन क्षेत्रों के भील पूरी तरह संगठित हो चुके थे तथा श्री गोविन्द गुरू के अनुयायी बन चुके थे। 7 दिसम्बर, 1908 (संवत् 1965, मार्गशीर्ष, शुक्ल पूर्णिमा) को मानागढ़ की पहाड़ी पर आयोजित मेले में हजारों की संख्या में भील आदिवासी सम्मिलित हुए, जिससे नाराज होकर, राजाओं की शिकायत पर ए.जी.जी. के आदेश पर खैरवाड़ा छावनी के सैनिकों ने इन निरीह आदिवासियों पर बिना किसी पूर्व सूचना के अन्धाधुन्ध

गोलियां चलाना शुरू कर दिया, जिसमें लगभग 1500 आदिवासी मारे गये।[9] गोविन्द गुरू को गिरफ्तार कर लिया गया तथा इनपर राजस्थान की डूंगरपुर, बांसवाड़ा कुशलगढ़ रियासतों में प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया गया। भील आदिवासियों पर गोविन्द गुरू की अमिट छाप आज भी परिलक्षित होती है।

असहयोग आन्दोलन की जागृति के प्रभाव में सन् 1921 ई. में मेवाड़ व अन्य राज्यों के भीलों व गरासियों ने भील नेता श्री मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में बेगार एवं लागबागों के विरूद्ध 'एकी आन्दोलन' चलाया। उन्होंने 'बुलेटिया' (बेगारी) की 21 'कलमें' समाप्त करवाने के लिए हजारों किसानों के साथ उदयपुर आकर महाराणा श्री फतह सिंह जी को ज्ञापन दिया। दरबार ने 18 'कलमें' माफ कर दी तथा तीन 'कलमें' जिनमें जंगलात, सुअर, बैठ बेगार सम्मिलित थी, माफ नहीं की। तेजावत जी ने उदयपुर के जगदीश मंदिर की सीढ़ियों पर खड़े होकर ऐलान किया कि 18 शर्तें महाराणा साहब ने छोड़ दी हैं तथा 3 मेवाड़ के पंचों ने। इस प्रकार अपनी शर्तें मंजूर हो चुकी हें।[10] 'एकी आन्दोलन' नाई कोटड़ा, मादड़ो, झाड़ोल, सिरोही, पालनपुर, ईडर, विजयनगर आदि रियासती जनता में फैल गया। विजयनगर रियासत के नीमड़ा गांव के पास हजारों की संख्या में आदिवासी किसान एकत्रित हुए, जहां रियासती सरकार व जनता के बीच लगान व बेगार को लकर शांति वार्ता चल रही थी। अचानक सैनिकों ने इन पर मशीनगनों से फायरिंग प्रारम्भ कर दी, जिसमें लगभग बारह सौ किसान शहीद हो गये। [11] तेजावत जी 8 वर्षों तक भूमिगत रहे। फिर महात्मा गांधी जी के कहने पर सन् 1929 में ईडर रियासत के खेड़ ब्रह्मा गांव में स्वयं को गिरफ्तार करवाया। श्री तेजावत जी ने भील किसानों को शराब छोड़ने, अपने भाई की विधवा से बलात् विवाह न करने, अविवाहित महिला के अपहरण को दंडनीय अपराध घोषित करने, विधवा पुनर्विवाह का समर्थन, पशु मांस न खाने एवं चोरी नहीं करने हेतु भी प्रेरित किया।[12]

भारतीय राजनीतिक दृश्यपटल पर महात्मा गांधी के पदार्पण के उपरान्त भारत के स्वतंत्रता संघर्ष को नई दिशा प्राप्त हुई। उन्होंने जन आन्दोलनों के संचालन हेतु 'अहिंसा' एवं 'सत्याग्रह' की पद्धति भारतीय जनमानस के समक्ष प्रस्तुत की तथा पंद्रह सूत्रीय रचनात्मक कार्यक्रमों – कौमी एकता, अस्पृश्यता निवारण, शराबबन्दी, खादी, दूसरे ग्रामोद्योग, गांवों की सफाई, बुनियादी शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, महिला उद्धार, आरोग्य के नियमों की शिक्षा, प्रान्तीय भाषाएं, राष्ट्रभाषा, आर्थिक समानता, किसान, मजदूर व आदिवासियों की सेवा, कोढ़ी, विद्यार्थी का उद्धार, इत्यादि की रूपरेखा प्रस्तुत की।[13] जनवरी, 1942 में गांधी जी ने श्री अमृतलाल ठक्कर जी के अनुरोध पर 'आदिवासियों के कल्याण' को रचनात्मक कार्यक्रमों में 14वां स्थान प्रदान किया।[14] अब राजस्थान के आदिवासी बाहुल्य क्षेत्रों में गांधीवादी कार्यकर्त्ताओं ने 'ठक्कर बापा' के नेतृत्व एवं मार्गदर्शन में रचनात्मक कार्यक्रमों का संचालन कर उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति सुधारने हेतु कार्य प्रारम्भ किया। इस कार्य के सम्पादन हेतु सन् 1934 से 1948 के मध्य कई सामाजिक संस्थाओं की स्थापना की गई। सन् 1934 में 'राजस्थान सेवा मण्डल' (अजमेर) द्वारा डूंगरपुर राज्य को केन्द्र बनाकर 'वागड़ सेवा मंदिर' की स्थापना की गई। श्री माणिक्यलाल वर्मा व श्री दुर्गाप्रसाद भील इस संस्था से जुड़े तथा खड़लाई पाल में एक पाठशाला स्थापित की गई। सन् 1935 में सागवाड़ा (डूंगरपुर) में 'भील सेवा आश्रम' स्थापित किया गया। श्री कल्याण शर्मा जी द्वारा पांतरी में दो पाठशालाएं खोली गई, जिनमें दिन में भील लड़के–लड़कियां पढ़ते थे एवं रात्रि में प्रौढ़ शिक्षा दी जाती थी। विद्यार्थियों को स्वच्छता से रहना भी सिखाया जाता था। आवश्यकतानुसार औषधी वितरण भी किया जाता था।[15]

शिक्षा के साथ–साथ कृषि एवं पशुपालन का प्रशिक्षण भी इन संस्थाओं के माध्यम से आदिवासियों को दिया जाता था। पशुओं के खाद को गड्ढों में डालकर संरक्षित करना, पशु एवं मनुष्यों के पृथक निवास स्थान, पशुओं की उत्तम नस्ल तथा पालन–पोषण का प्रशिक्षण दिया गया। आदिवासी किसानों को कुएं खोदकर गेहूं, कपास व तिल की खेती करने की प्रेरणा दी गई। श्री दुर्गाप्रसाद जी की देखरेख में एक बुनाई पाठशाला खोली गई तथा बिजौलिया से आए एक अनुभवी खादी शिक्षक हेमराज जी ने विद्यार्थियों को कताई–पिंजाई, बुनाई का प्रशिक्षण दिया। श्रीमती नारायणी देवी एवं विमला देवी ने आदिवासी महिलाओं को चरखा चलाना सिखाया। 'वागड़ सेवा मंदिर' के कार्यकर्त्ताओं के सद्प्रयासों से खड़लाई और पांतली, दोनों पालों के लगभग सभी घरों में चरखा चलने लगा। तत्पश्चात् शराबबन्दी का कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया, जो शीघ्र ही सफल हो गया। गांधीवादी कार्यकर्ता श्री माणिक्यलाल वर्मा जी के निर्देशन में आदिवासी मेलों, मौसरों एवं गायनों, व्याख्यानों, प्रदर्शनियों के माध्यम से आदिवासियों में उक्त रचनात्मक कार्यों का प्रचार कार्य चलता रहा। 1936 ई. में डूंगरपुर में भीषण अकाल पड़ा। इस समय भी राजस्थान सेवा मंडल के कार्यकर्त्ता श्री भोगीलाल पांड्या, माणिक्यलाल वर्मा, दुर्गाप्रसाद, कल्याण शर्मा, गौरीशंकर उपाध्याय, चंदूलाल गुप्त, मदनसिंह तोमर, रेखाशंकर पांड्या, हेमराज धाकड़, गोवर्धनलाल एवं भैरूलाल आदि ने यहां के आदिवासी इलाकों में अकाल राहत कार्य के साथ–साथ शिक्षा, खादी, स्वच्छता सदाचार, निर्व्यसनता एवं कृषि सुधार सम्बन्धी प्रचार कार्य भी सम्पादित किया।[16] इन कार्यकर्त्ताओं के सद्प्रयासों से भील जनजाति में प्रचलित 'दापा' (विवाह के अवसर पर वर पक्ष द्वारा वधु पक्ष को 50 रूपये कपड़े खरीदने के लिए देना) एवं 'सागड़ी' (साहुकार का कर्ज उतारने तक भील परिवार के एक वयस्क सदस्य को साहुकार के घर पर मात्र भोजन के बदले, चौबीस घंटे का नौकर रहना) प्रथा को आदिवासी पालों की पंचायतों की सहमति से, राज्य द्वारा कानून बनाकर, गैर–कानूनी घोषित कर दिया गया।17

1937 ई. में 'डूंगरपुर सेवा संघ' (1938–1945 ई.) के संचालन का उत्तरदायित्व श्री भोगीलाल पांड्या को सौंपा दिया गया। इनकी एक शाखा बांसवाड़ा के परतापुर नामक स्थान पर स्थापित की गई। बांसवाड़ा में गांधीवादी कार्यकर्ता श्री धूलाजी भाई भावसर ने बांसवाड़ा राज्य के

भील आदिवासियों के अधिकारों के लिए संघर्ष किया। यहाँ भी आदिवासियों में गरीबी, अशिक्षा, दुर्बल स्वास्थ्य, अनाज का अभाव, इत्यादि मुख्य समस्याएं थीं। धूलजी भाई भावसर ने आदिवासियों को अनाज उपलब्ध करवाने की व्यवस्था की तथा इनसे ली जाने वाली बेगार का विरोध किया। बांसवाड़ा के ही श्री माणिक्यलाल विद्यार्थी ने डूंगरपुर के भीलों एवं दलितों के मध्य रचनात्मक कार्यक्रमों का सफलतापूर्वक संचालन किया। बेणेश्वर धाम मेले में प्रतिवर्ष बड़ी संख्या में आदिवासी भाग लेते थे तथा इस अवसर पर गांधीवादी कार्यकर्त्ता यहां रचनात्मक कार्यक्रमों का प्रचार करते थे। इस मेले में बाबा लक्ष्मणदास एवं गौरीशंकर उपाध्याय रचित गीत गाए जाते थे तथा अस्पृश्यता निवारण, कपास की खेती, चरखा, खादी शिक्षा, इत्यादि कार्यक्रमों का प्रचार किया जाता था।[18] इन सभी सम्मिलित प्रयासों से डूंगरपुर एवं बांसवाड़ा क्षेत्रों के आदिवास बाहुल्य क्षेत्रों में आदिवासियों की स्थिति में उल्लेखनीय सुधार होने लगा।

मेवाड़ राज्य प्रजामण्डल ने मेवाड़ राज्य में निवास करने वाली भील, मीणा एवं अन्य आदिवासियों के उत्थान हेतु निरन्तर प्रयास किए। सन् 1940 में अनावृष्टि के समय 'दुष्काल पीड़ित सहायता समिति' के माध्यम से कुम्भलगढ़, बारापाल, जहाजपुर बनेड़ा, कांकरोली आदि स्थानों पर अकाल राहत केन्द्र खोले गए तथा आदिवासी किसानों कृषि उपकरण व बीज तथा खाद्यान्न उपलब्ध करवाए गए। 11 फरवरी, 1942 को श्री ठक्कर बापा तथा श्रीमती रामेश्वरी नेहरू एवं श्री बलवंत सिंह मेहता के सहयोग से 'ऋषभदेव में भील सेवा समिति' की स्थापना की गई तथा भील लड़कों के लिए आवासीय स्कूल खोला गया।[19] 1944 ई. में 'भील सेवा संघ' की स्थापना की गई तथा इसका मुख्यालय उदयपुर बनाया गया। श्रीमती नारायणी देवी (धर्मपत्नी श्री माणिक्यलाल वर्मा जी) के प्रयासों से वर्ष 1944 में वागड़ के खंडलाई में पांच छात्राओं के साथ एक महिला आश्रम स्थापित किया गया। मेवाड़ महाराणा भूपालसिंह जी द्वारा तीन बीघा मुफ्त में भूमि देने पर श्रीमती नारायणी देवी ने यहां कन्या पाठशाला स्थापित की। कालान्तर में इसकी एक शाखा उदयपुर में 'माणिक्यलाल वर्मा भील कन्या पाठशाला' के नाम से स्थापित की गई। यहां भील एवं मीणों की 80 आदिवासी छात्राएं शिक्षा ग्रहण कर रही थीं।[20]

जयपुर, अलवर, भरतपुर आदि मीणा आदिवासी बाहुल्य क्षेत्रों में भी समाज के सेवाभावी एवं प्रबुद्ध वर्ग ने जरायम पेशा कानून उन्मूलन एवं मीणा जनजाति में समाज सुधार कार्यक्रमों का संचालन किया। श्री महादेवजी पबड़ी, छोटूराम झरवाल, जवाहरराम, मानोलाल आदि ने मिलकर 'मीणा जाति सुधार समिति' नामक संस्था की स्थापना की, जिसका उद्देश्य – मीणा आदिवासी समाज में प्रचलित कुरीतियों को समाप्त करना तथा उनमें शिक्षा का प्रचार–प्रसार करना था। 1928 ई. में इस समिति ने एक पुस्तक का भी प्रकाशन किया, जिसका उद्देश्य 'मीणाओं में संगठन एवं सुधार की भावना जागृत करना' था।[21] सन् 1942 में श्री सूरजभान बैरवा के प्रयासों से 'अखिल भारतीय मीणा क्षत्रिय महासभा' का अधिवेशन दिल्ली में आयोजित किया गया, जिसमें जयपुर क्षेत्र के भंवरलाल, विरधीचन्द तथा झूथालाल जी सम्मिलित हुए। इस सम्मेलन में मीणा जाति में प्रचलित कुरीतियों तथा 'अपराधी जाति अधिनियम' का विरोध किया गया।[22] अप्रेल, 1944 में जैन मुनी मगनसागर जी की अध्यक्षता में नीम का थाना क्षेत्र में मीणों का एक विशाल सम्मेलन हुआ, जिसमें 'जयपुर राज्य मीणा सुधार समिति' का गठन किया गया। इस समिति के प्रधान पंडित बंशीधर शर्मा, मंत्री श्री राजेन्द्र कुमार अजेय तथा संयुक्त मंत्री श्री लक्ष्मीनारायण झरवाल बनाए गए।[23] इस समिति द्वारा आयोजित अपने विभिन्न सम्मेलनों में जरायम पेशा कानून, दादरसी, चौकदारी प्रथा समाप्त करने हेतु पुरजोर आवाज उठाई गई। अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद तथा जयपुर प्रजामंडल जैसी जन प्रतिनिधि संस्थाओं ने भी अपने सालाना जलसों में जरायम पेशा कानून तुरन्त समाप्त करने के पक्ष में अपना समर्थन दिया।[24] समाज सेवक श्री ठक्कर बापा ने भी सर मिर्जा इस्माईल को पत्र लिखकर इस कानून को जातिगत रूप से समाप्त करने का परामर्श दिया। 'जयपुर राज्य राजपूत सभा', 'अखिल भारतीय जाट महासभा' तथा अनेक राजनीतिक सम्मेलनों एवं वार्षिक अधिवेशनों में इस कानून को समाप्त करने के लए प्रस्ताव पारित किए गए।[25] 31 दिसम्बर, 1945 को पंडित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में आयोजित होने वाले 'अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद' के उदयपुर अधिवेशन से पूर्व ही 'जयपुर राज्य मीणा सुधार समिति' द्वारा 'मीणों की मांग : क्या सम्बन्धित अधिकारी उत्तर देंगे ?' नामक पुस्तिका का प्रकाशन किया गया, जिसमें जरायम पेशा कानून समाप्त करने की मांग की गई। इस कानून को समाप्त करने हेतु तोरावटी क्षेत्र में भोड़की तथा नयाबास क्षेत्रों में सत्याग्रह भी किया गया था।[26] मुनी मगनसागर जी की अध्यक्षता में मत्स्य क्षेत्र (अलवर) राज्य के शाहजहांपुर में भी एक सम्मेलन आयेाजित किया गया। दिसम्बर, 1945 में नींदड – बैनाड़ (जयपुर) में भी श्री राजेन्द्र कुमार अजेय की अध्यक्षता में एक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में, उदयपुर में प्रस्तावित (दिसम्बर, 1945 – जनवरी, 1946) देशी राज्य लोक परिषद के अधिवेशन में मीणाा जनजाति की समस्याओं से सम्बंधित प्रस्ताव स्वीकार करने की मांग की गई। नेहरू जी ने इस संदर्भ में लोक परिषद सम्मेलन में एक प्रस्ताव स्वीकार भी किया। 1944–1945 में 'जयपुर राज्य मीणा क्षत्रिय महासभा' के तत्वाधान में एक सम्मेलन आयोजित हुआ, जिसकी अध्यक्षता रामवृक्ष सीहरा ने की। प्रजामंडल के नेताओं ने भी इन मीणा सम्मेलनों को अपना समर्थन प्रदान किया।[27]

वर्ष 1946 में श्री लक्ष्मीनारायण झरवाल जी की अध्यक्षता में पुष्कर तीर्थ पर मेरवाड़ा के रावत मीणों का सम्मेलन आयोजित हुआ, जिसमें वर्ग–भेद की समाप्ति पर निर्णय लिए गए।[28] 19–20 अक्टूबर, 1946 को भरतपुर में 'भरतपुर राज्य मीणा क्षत्रिय सभा' के आयोजन सम्बन्धी पेम्पलेट में चौधरी दानसिंह जी (शाहजहांपुर पंजाब), मुंशी हरनारायण सिंह (उत्तरप्रदेश), रामसिंह नौरावत (अजमेर), पं. बंशीधर शर्मा (जयपुर), श्री लक्ष्मीनारायण जी (अलवर)

इत्यादि नेताओं के सम्मिलित होने तथा प्रस्तावित सम्मेलन में जातीय संगठनों (चौकीदार एवं जमींदार) में मेलजोल बढ़ाने, जरायम पेशा कानून का विरोध, अपने समाज की कुरीतियों को दूर करने तथा शिक्षा का प्रचार करने इत्यादि प्रस्ताव सम्मिलित किए गए।[29] इन सभी सम्मिलित प्रयासों के परिणामस्वरूप दिनांक 1 जून, 1946 को जयपुर राज्य के असाधारण गजट संख्या 5547, पृ. 51, कॉलम 4723 एमबी के अनुसार दादरसी कानून समाप्त कर दिया गया तथा बालिग होने पर सजायाफ्ता किसी व्यक्ति को अपराधी जाति रजिस्टर में पंजीकृत नहीं करने तथा स्त्रियों को हाजिरी देने के लिए नहीं बुलाए जाने के निर्णय लिए गए।[30] 10 अगस्त, 1946 के असाधारण गजट में कुछ सुधारों की घोषणा की गई, जो कि 15 अगस्त, 1946 के जयपुर न्यूज लेटर जि. 4, सं. 17 में प्रकाशित हुई। इस घोषणा की अस्पष्ट भाषा में सहमत न होने पर 'जयपुर राज्य मीणा सुधार समिति' द्वारा 6 जून, 1947 को जौहरी बाजार (जयपुर) में जरायम पेशा कानून का पुतला जलाया गया। तथा सामुहिक रूप से मीणों ने हाजिरी देना बंद कर दिया। पुलिस ने 150 लोगों को गिरफ्तार कर लिया, परन्तु हाजिरी का नियम लागू करवाने में असफल रही।[31] वर्तमान राजस्थान के गठन के पश्चात् जयपुर राज्य मीणा सुधार समिति का नाम बदलकर 'राजस्थान राज्य मीणा सुधार समिति' रख दिया गया। इस संस्था के प्रमुख कार्यकर्त्ता श्री राजेन्द्र कुमार अजेय, श्री लक्ष्मीनारायण झरवाल तथा झूथालाल नाढ़ला इत्यादि थे। इस संस्था के प्रमुख कार्य – जरायम पेशा रजिस्टरों में नाम दर्ज होने बंद करवाना, महिलाओं को हाजिरी बंद करवाया, सवारी व हथियार रखने पर प्रतिबंध हटवाना, चौकीदारी व्यवस्था समाप्त करना, मद्यपान एवं चोरी की आदत छुड़वाना तथा बालकों में शिक्षा का प्रचार हेतु कार्य करना, इत्यादि था। अन्ततः 31 अगस्त, 1952 को ब्रिटिशकालीन अपराधी जाति कानून को समाप्त कर दिया गया। इस अधिनियम से मुक्त हुई जातियों को 'विमुक्त जाति' कहा गया।

निष्कर्ष

अन्ततः कहा जा सकता है कि राजस्थान के आदिवासी बाहुल्य क्षेत्रों में उपरोक्त वर्णित विभिन्न सामाजिक एवं राजनीतिक संस्थाओं एवं समाज सेवियों द्वारा विभिन्न सुधारात्मक कार्यक्रम संचालित किए गए जिनके भविष्य में सुखद परिणाम प्राप्त हुए। अब इन आदिवासी जातियों में सामाजिक चेतना के साथ–साथ राजनीतिक चेतना का भी विकास हुआ। मुख्यरूप से वर्ष 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में इन आदिवासियों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। अब आदिवासी लोग राष्ट्रवाद की मुख्य धारा से जुड़ चुके थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा इनके उत्थान हेतु विभिन्न योजनाएं लागू की गईं तथा अब ये बहुत शिक्षित हो गये हैं। परन्तु अभी भी राजस्थान में बहुत सी आदिवासी जनजातियां समाज की मुख्य धारा से नहीं जुड़ पाई हैं तथा उन्हें केन्द्र एवं राज्य सरकारों की विकास योजनाओं का सम्पूर्ण लाभ भी नहीं मिल पा रहा है। अतः इस संदर्भ में बहुत ही गंभीर एवं ठोस प्रयास किए जाने अपेक्षित हैं। सरकारी प्रयासों के साथ ही समाज सेवी संस्थाएं एवं समाज के शिक्षित प्रबुद्ध वर्ग भी इस हेतु अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इन जनजातियों में मुख्य रूप से शिक्षा का प्रसार एवं इन्हें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने हेतु प्रयास किए जाने आवश्यक हैं। साथ ही इनके द्वारा निर्मित हस्तशिल्प की वस्तुओं को विस्तृत बाजार तक पहुंच बनाकर इनकी आर्थिक, सामाजिक उन्नति की जा सकती है। स्थानीय स्वशासन में भी इनकी भागीदारी बढ़ाए जाने की आवश्यकता है, जिससे ये अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो सकें तथा अपने समुदाय का उचित प्रतिनिधित्व कर सकें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *शर्मा, डॉ. गोपीनाथ : 'राजस्थान के स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास', रेयर बुक्स सेक्शन, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, 1987, पृ. 7 (ऑनलाईन पोर्टल)*
2. *एथनोग्राफिक एटलस ऑफ राजस्थान, जयपुर, 1969, रा.रा.अ., बीकानेर, ऑनलाईन पोर्टल, पृ. 117, 119, 121, 123, 125*
3. *पूर्वोक्त, डॉ. गोपीनाथ शर्मा, पृ. 201*
4. *शर्मा डॉ. बृजकिशोर : 'राजस्थान में किसान एवं आदिवासी आन्दोलन', राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2016, पृ. 15*
5. *वही, पृ. 7*
6. *पूर्वोक्त, डॉ. गोपीनाथ शर्मा, पृ. 218*
7. *रावत सारस्वत, : 'मीणा इतिहास', राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2018, पृ. 142*
8. *सुमनेश जोशी : 'राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी', ग्रंथागार, जयपुर, पृ. 2*
9. *वही, पृ. 7*
10. *वही, पृ 177*
11. *वही, पृ 177*
12. *पूर्वोक्त, शर्मा, ब्रजकिशोर : 'राजस्थान में किसान एवं आदिवासी आन्दोलन', राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2016, पृ. 105*
13. *मो. क. गांधी (अनुवादक – काशीनाथ त्रिवेदी) : 'रचनात्मक कार्यक्रम, उसका रहस्य और स्थान', नवजीवन प्रकाश मंदिर, अहमदाबाद, 1946, पृ. 6*
14. *प्रो. वशिष्ठ, वी.के. : अध्यक्षीय उद्‌बोधन, राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस (20वां अधिवेशन) उदयपुर सत्र, 2004, पृ. 4*
15. *चौधरी, रामनारायण : 'वर्तमान राजस्थान', राजस्थान प्रकाशन मंडल, अजमेर, 1948, पृ. 145*
16. *ओरल हिस्ट्री ट्रांसक्रिप्ट ऑफ चंदुलाल गुप्त, ए.सी.सी नं. 126, टाईटल नं. ए, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, ऑनलाईन ऑडियो गैलेरी (साक्षात्कार तिथि 04.06.1987)*
17. *पूर्वोक्त, चौधरी, रामनारायण, पृ. 147*
18. *ओरल हिस्ट्री ट्रांसक्रिप्ट ऑफ माणिक्यलाल विद्यार्थी (बांसवाड़ा), ए.सी.सी नं. 128, टाईटल नं. ए, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, ऑनलाईन ऑडियो गैलेरी (साक्षात्कार तिथि 04.06.1987)*

19. ट्रांसक्रिप्ट ऑफ बलवंतसिंह मेहता, ए.सी.सी नं. 81, टाईटल नं. प्, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, ऑनलाईन ऑडियो गैलेरी
20. ट्रांसक्रिप्ट ऑफ श्रीमती नारायणी देवी वर्मा, ए.सी.सी नं. 562, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एवं लाईब्रेरी, नई दिल्ली, पृ. 32
21. पूर्वोक्त, डॉ. शर्मा, गोपीनाथ, पृ. 219
22. पूर्वोक्त, रावत सारस्वत, पृ. 145
23. वही, पृ. 144
24. जयपुर प्रजामंडल रिकार्ड्स, बस्ता नं. 24, फाईल नं. 10, पृ. 274–275, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर (ऑनलाईन पोर्टल)
25. वही, पृ. 276
26. पूर्वोक्त, रावत सारस्वत, पृ. 145
27. वही, पृ. 145
28. ओरल हिस्ट्री ट्रांसक्रिप्ट ऑफ लक्ष्मीनारायण झरवाल, ए.सी.सी नं. 285, टाईटल नं. ए, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, ऑनलाईन ऑडियो गैलेरी (साक्षात्कार तिथि 27.07.1992)
29. भरतपुर राज्य प्रजामंडल रिकॉर्ड्स, बस्ता नं. 18, फाईल नं. 06, 1946, पृ. 162, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर (ऑनलाईन पोर्टल)
30. पूर्वोक्त, रावत सारस्वत, पृ. 146
31. सारस्वत, रावत : 'मीणा इतिहास', राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2018, पृ. 146